''मैं भी तुझ पर दण्ड की आज्ञा नहीं देता''

(8:1-11)

सुसमाचार की यूहन्ना द्वारा लिखित पुस्तक के अध्याय 8 में बहुत से लोगों की पसन्दीदा कहानी मिल सकती है। पवित्र-शास्त्र का यह भाग यीशु की सेवकाई के हृदय तथा प्राण को ग्यारह आयतों में संक्षिप्त करके एक जगह एकत्र करता है। यद्यपि मूल रूप में यह सुसमाचार की यूहन्ना द्वारा लिखित पुस्तक में नहीं था,[1] परन्तु यह एक महत्वपूर्ण भाग है जिसमें हमें यीशु का अविस्मरणीय चित्र मिलता है।

यीशु ने दुविधा को कैसे दूर किया (8:1-9)

कहानी का आरम्भ यीशु के जैतून के पहाड़ की ओर जाने से होता है, जो क्रूसारोहण से पूर्व अन्तिम सप्ताह के दौरान उसकी दिनचर्या बन गया था।[2] अगले दिन भोर तक वह यरूशलेम लौटकर मन्दिर में चला गया। जब लोग उसके आस पास इकट्ठे हुए, तो वह बैठकर उन्हें उपदेश देने लगा। इसी दौरान, ग्रन्थी (धार्मिक गुरु) और फरीसी[3] यीशु के पास एक स्त्री को लाए जो व्यभिचार करते हुए पकड़ी गई थी। कोई दया या रहम न दिखाते हुए उन्होंने उस स्त्री को लोगों के सामने डांटते हुए ''बीच में खड़ी'' (8:3) कर दिया। जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि उनकी मुख्य दिलचस्पी उस स्त्री को दण्ड देने में नहीं बल्कि यीशु को फंसाने में थी।

उन्होंने उससे कहा, ''हे गुरु यह स्त्री व्यभिचार करते पकड़ी गई है। व्यवस्था में मूसा ने हमें आज्ञा दी है कि ऐसी स्त्रियों को पत्थरवाह करें: सो तू इस स्त्री के विषय में क्या कहता है ?'' (8:4, 5)। कुछ देर तक उन्हें लगा कि वे उसे अपने जाल में फंसाने में सफल हो गए हैं। प्रमाण देने के बारे में यहूदी सभा के नियम बहुत कठोर थे। संदेह, अफवाह या दो लोगों को किसी घर में जाते देखना ही काफ़ी नहीं था। ग्रन्थियों (धार्मिक गुरुओं)व फरीसियों द्वारा लगाए गए ऐसे आरोप की तरह किसी व्यक्ति के विरुद्ध व्यभिचार के आरोप लगाने से पहले व्यभिचार करते देखने के दो गवाह होने आवश्यक थे।

यीशु के विरोधियों ने पहले से ही अच्छी तैयारी की हुई थी, और उन्हें यकीन था कि उन्होंने उसे फंसा लिया है। यदि वह कहता कि उस स्त्री को पत्थर न मारे जाएं तो क्या यह मूसा की व्यवस्था का उल्लंघन नहीं था?[4] इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस तरह के उत्तर से ग्रन्थी और फरीसी लोगों के सामने यीशु को निर्बल और व्यवस्था के प्रति अविश्वासी साबित कर सकते थे। परन्तु उसने उनकी सोच के विपरीत कहा, ''उसको पत्थर मारो!'' यीशु ने अपने आपको एक क्रांतिकारी और रोमी कानून का उल्लंघन करने के लिए उकसाने वाले के रूप में पेश किया, जो यहूदियों को किसी को प्राण दण्ड देने से रोकता था।[5] यीशु का जवाब कैसा भी हो, यहूदी अगुओं को लगा कि उन्होंने उसे फंसा लिया है। इस योजना की चतुराई को समझने पर ही हमें केवल इस बात की समझ आती है कि यीशु ने कितनी बुद्धिमत्ता से उत्तर दिया।

यीशु जानता था कि उनके इरादे नेक नहीं थे (8:6)। आखिर वे व्यभिचार में लिप्त उस पुरुष को क्यों नहीं लाए थे? व्यभिचार ऐसा पाप नहीं है जिसे कोई व्यक्ति अकेले ही कर सकता हो परन्तु यीशु के सामने केवल स्त्री को ही लाया गया था। स्पष्टत: उनकी दिलचस्पी मूसा की व्यवस्था का पालन किए जाने को देखने के बजाय यीशु को फंसाने में अधिक थी। उनकी दिलचस्पी धर्म में नहीं बल्कि शक्ति में थी।

उसने उन्हें उत्तर न दिया (आयत 6)

अपने विरोधियों के ''लाजवाब प्रश्न'' के उत्तर में पहले तो यीशु ने कुछ नहीं कहा! जब सब लोग उसकी ओर देख रहे थे, तो वह नीचे झुककर अपनी उंगली से भूमि पर कुछ लिखने लगा (8:6)। काफी देर तक यीशु के आस पास चुप्पी छायी रही होगी। उसने उनके प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार कर दिया। उसका क्या कहना था? वह फिर कब बोलेगा? यहूदी अगुओं का अगला कदम क्या होगा?

कई बार कुछ न कहना ही बेहतर होता है। कभी-कभी किसी बात का उत्तर न देना ही सबसे अच्छा उत्तर हो सकता है। नीतिवचन 26:4, 5 कहता है:

> मूर्ख को उसकी मूर्खता के अनुसार उत्तर न देना
> ऐसा न हो कि तू भी उसके तुल्य ठहरे।
> मूर्ख को उसकी मूढ़ता के अनुसार उत्तर देना,
> ऐसा न हो कि वह अपने लेखे बुद्धिमान ठहरे।

पहले तो, ये दोनों वाक्य अपने आप में विरोधाभासी लगते हैं। परन्तु और विचार करने पर हमें समझ आता है कि मूर्ख को उसकी मूर्खता के अनुसार उत्तर देने का समय होता है और ऐसा समय भी होता है जब उत्तर देना समझदारी की बात नहीं होती। यूहन्ना 8 अध्याय में उत्तर देना समझदारी नहीं थी। यीशु की बात चाहे कितनी भी सत्य होती, उसका सच किसी ने नहीं सुनना था। प्रश्न को घुमाया गया था, राजनीतिक भावनाएं पूरे उफान पर थीं, और

उन्होंने किसी भी उत्तर को सत्य नहीं मानना था। ऐसी स्थिति में, यीशु ने कुछ नहीं कहा।

उसने प्रकाश बिन्दु को उनकी ओर मोड़ दिया (आयतें 7-9)

अन्ततः, जब ग्रन्थी और फरीसी ज़िद करते रहे कि यीशु उनके प्रश्न का उत्तर दे, तो वह खड़ा होकर कुछ बोलने लगा, जिससे गत दो हज़ार वर्षों से मसीही लोग दोहराते आ रहे हैं: ''तुम में जो निष्पाप हो, वही पहिले उसको पत्थर मारे'' (8:7)। वह दोबारा नीचे झुककर भूमि पर लिखने लगा। जब सब को अभी-अभी कहे यीशु के शब्दों की सामर्थ समझ आने लगी तो एक बार फिर भीड़ में दर्दभरी चुप्पी छा गई होगी।

यीशु भूमि पर क्या लिख रहा था? कहानी में स्पष्ट नहीं बताया गया है। कुछ लोगों का कहना है कि वह कुछ भी नहीं लिख रहा था बल्कि अपने विरोधियों को टालने के लिए समय दे रहा था। दूसरों का अनुमान है कि वह पवित्र शास्त्र की वे आयतें लिख रहा था जिनमें ग्रन्थियों और फरीसियों को उस दिन उनके काम के लिए दोषी ठहराया गया था। कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनका विचार है कि यीशु भूमि पर उस स्त्री पर आरोप लगाने वालों के पाप लिख रहा था। उसने जो कुछ भी लिखा या नहीं लिखा, परन्तु उसकी एक आज्ञा से ही प्रकाश बिन्दु उस स्त्री से हटकर उसे यीशु के पास लाने वालों की ओर मुड़ गया था।

''जो निष्पाप हो'' कहकर यीशु ने यहूदी अगुओं को उतना ही बेचैन कर दिया जितना उन्होंने उस स्त्री को परेशान किया था जो अभी भी उनके बीच खड़ी थी। अपने पाप का सामना करने के बजाय दूसरों के पाप पर उंगली उठाना हमेशा अच्छा लगता है। यह बेचैनी तब तक बढ़ती गई जब तक बड़े से लेकर छोटे तक सब वहां से चले न गए। बूढ़े लोग पहले चले गए होंगे क्योंकि यदि भीड़ कोई मूर्खता करती तो उसकी ज़िम्मेदारी उन पर ही आनी थी। शायद बूढ़े लोग समझदार थे और यीशु के जवाब को जल्दी ही समझ गए थे। उनके विचार जो भी थे, परन्तु उन्हें समझ आ गई थी कि उसने उनके लाजवाब प्रश्न को एक असम्भव आज्ञा में बदल दिया था।

यीशु ने एक व्यक्ति से कैसा व्यवहार किया (8:10,11)

इस दुविधा को समझदारी से निपटाकर, यीशु ने दिखाया कि किसी व्यक्ति से किस तरह व्यवहार करना चाहिए। लोगों के जाने के बाद, यीशु ने खड़े होकर इधर-उधर देखा। उसने आरोपी स्त्री से पूछा, ''हे नारी, वे कहां गए? क्या किसी ने तुझ पर दण्ड की आज्ञा न दी'' (8:10)। यहां पहुंचकर हमें अहसास होता है कि हम इस स्त्री के बारे में कितना कम जानते हैं। यद्यपि उसे अक्सर ख़तरनाक अन्याय के एक भले शिकार के रूप में दिखाया जाता है, परन्तु हमें उसके पाप के अतिरिक्त उसके बारे में और कुछ नहीं बताया गया! क्या वह भद्र और लोगों में प्रिय थी, या रुक्ष और घृणित थी? अपने ऊपर आरोप लगाने वालों के ''बीच में खड़ी'' (8:3, 9) होने पर क्या वह दयनीय व्यक्ति की तरह सिसक रही थी जिसे अपने किए हुए पर लज्जा आ रही हो या वह उन लोगों की ओर क्रोध से देख रही थी जिन्होंने

उसे मन्दिर तक खींच लाने का साहस किया था? हम केवल इतना ही जानते हैं कि उसे व्यभिचार करते पकड़ा गया था और उसका पाप मन्दिर के आंगनों से खुले आम लोगों को बताया गया था। इस कहानी को अद्‌भुत बनाने वाली वह स्त्री नहीं है, बल्कि यीशु के जवाब का ढंग है।

उसने उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया

क्या आप कभी उस समय लोगों के बीच गए हैं जब वे आपके बारे में बात कर रहे हों? शायद बचपन में या अस्पताल में बीमार होने पर आपको लोगों को अपने बारे में बातें करते हुए सुनना पड़ा हो कि जैसे आप वहां हो ही नहीं। यह एक कटु अनुभव है। ग्रन्थियों और फरीसियों द्वारा इस स्त्री से ऐसा ही व्यवहार किया जा रहा था। वह एक मोहरे या समस्या से बढ़कर कुछ भी नहीं थी। उस पर आरोप लगाने वालों को शर्मिंदा करके यीशु ने उसकी ओर मुंह करके उससे बात की। यह तथ्य कि उसने उस स्त्री के *विषय* में बात करने के बजाय स्वयं *उससे* बात की, शायद उस स्त्री के लिए सबसे कीमती उपहार था।

यीशु ने उसे संकट में डालने वाली असफलता या चिढ़ाने वाली कठिनाई के रूप में नहीं बल्कि एक व्यक्ति अर्थात परमेश्वर की रचना के रूप में देखा जिसमें परमेश्वर द्वारा दी गई विशाल क्षमता थी। सुसमाचार की चारों पुस्तकों में लोगों *से* बात करना यीशु की विशेषता है। इसके अलावा, आज यीशु के देखने का ढंग भी सबसे अलग है। वह हम में से हर एक को बहुत महत्व देता है और मन से प्रेम करता है। ऐसे संसार में जहां हम कई बार अपने आपको निकम्मा समझते हैं, यीशु हमें सम्मान देकर हमारे साथ अच्छा व्यवहार करता है। व्यभिचार करते पकड़ी गई स्त्री से उसका मिलना उस सच्चाई को स्मरण दिलाने के लिए एक ठोस उदाहरण है।

उसने उससे दयापूर्ण व्यवहार किया

यीशु ने न केवल उस स्त्री को सम्मान ही दिया, बल्कि उसके प्रति व्यवहार में अद्‌भुत दया भी दिखाई। उसका करुणामय कार्य भूमि पर लिखना था। क्या यह अजीब लगता है? उस दृश्य की फिर से कल्पना करें। स्त्री को मन्दिर के आंगन में जहां यीशु उपदेश दे रहा था, घसीटकर लाया गया था। ग्रन्थियों और फरीसियों ने शोर मचाते हुए यीशु और वहां उपस्थित लोगों से यह कहा कि यह स्त्री व्यभिचार करते पकड़ी गई थी। हर आंख इस बदनाम स्त्री की ओर देख रही होगी। क्या इससे अधिक अपमानित करने वाली बात कोई और भी हो सकती थी? जब यीशु से पूछा गया कि उसके साथ क्या किया जाना चाहिए तो वह झुककर भूमि पर लिखने लगा। उस समय हर कोई यीशु के अजीब व्यवहार को देख रहा था। वह क्या लिख रहा था? क्या इसका कोई अर्थ था? उसने बोलना कब था? क्या यहूदी अगुओं ने उसकी शिक्षा में कोई कमी निकाल दी थी? अचानक, किसी का भी ध्यान शायद उस स्त्री की ओर नहीं था। यीशु द्वारा भीड़ का ध्यान स्त्री की ओर से हटाकर स्वयं अपनी ओर करना उसके लिए दया का पहला बहुमूल्य उपहार था।

उसके बाद, जब उस पर आरोप लगाने वाले चले गए तो यीशु के उस स्त्री से कहे गए शब्द हमें सुनाई पड़ते हैं: ''मैं भी तुझ पर दण्ड की आज्ञा नहीं देता ...'' (8:11ख)। यह एक कानूनी वाक्य था जिसका अर्थ था ''मैं भी तुझे मृत्यु दण्ड नहीं देता।'' यद्यपि यीशु भीड़ का समर्थन पाने के लिए इस स्त्री के प्राण का बलिदान कर सकता था, परन्तु उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। उस दिन वहां केवल एक ही व्यक्ति को यह अधिकार था कि पहला पत्थर मारे और वह व्यक्ति वही था जिसने कहा था, ''मैं भी तुझ पर दण्ड की आज्ञा नहीं देता!'' दया का यह सबसे बड़ा सम्भावित उपहार था।

उसने निष्कपटता से व्यवहार किया

इस कहानी को भावुक बनाने अर्थात पाप को सहज ढंग से लेने के प्रलोभन में आने वाले लोग कहानी के इस महत्वपूर्ण भाग, कि यीशु ने उस स्त्री को भेजते हुए उससे कहा, ''फिर पाप न करना'' (8:11ग) को अनदेखा कर देते हैं। वह दयालु तो था परन्तु उस स्त्री का पाप उसने स्पष्ट बता दिया था। उसके पाप का विरोध करना आवश्यक था। आज हमारे पास बहुत से ऐसे ढंग हैं जिनके द्वारा हम अपने पाप का विरोध होने से बचने का प्रयास करते हैं। हम पाप को नज़रअंदाज़ करने (''मैं इसके बारे में सोचूंगा भी नहीं''), पाप से इन्कार करने (''मैंने कोई गलत काम नहीं किया है'') या पाप को उचित ठहराने (''हमारे घर में, अपने काम में या समाज में ऐसा ही चलता है'') का यत्न करते हैं। इसके विपरीत, यीशु ने इस बात पर ज़ोर दिया कि वह स्त्री अपने पाप को स्वीकार करे। उसने पाप को ''पाप'' ही कहा। आज हमें इसी उपचार की आवश्यकता है। यीशु हमें यह कहकर ग्रहण नहीं करता कि ''इसकी चिंता छोड़ दे। यह कोई बड़ी बात नहीं है!'' बल्कि वह कहता है कि क्रूस की तरह ही पाप चिन्ता का विषय है! छुटकारा पाने के लिए, हमें पहले तो वास्तविकता को और फिर अपने पापों को मानना आवश्यक है। यद्यपि हम अपने पापों का दाम कभी भी नहीं चुका सकते फिर भी हमें अपने पापी होने की बात ईमानदारी से मान लेनी चाहिए, वरना हमारा मन फिराव कभी नहीं हो सकता। जब तक हम इस बात को नहीं समझते कि हमारे पाप का अशुभ समाचार कितना बुरा है, तब तक हमें यह समझ नहीं आ सकती कि सुसमाचार का शुभसमाचार कितना अच्छा है! यीशु आज भी ज़ोर देता है कि उसके लोग अपने पाप को मानने में और अपने कामों की ज़िम्मेदारी लेने में ईमानदार हों।

उसने उसके साथ अनुग्रह व आशा भरा व्यवहार किया

इन आयतों में यीशु द्वारा उस स्त्री के पाप क्षमा करने का कोई संकेत नहीं मिलता, परन्तु उसने उसे मृत्यु दण्ड देने से इन्कार अवश्य किया। उससे कहे यीशु के शब्द हमें स्मरण दिलाते हैं कि उसने बैतहसदा के कुण्ड के पास लंगड़े आदमी को क्या कहा था जिसे उसने अच्छा किया था: ''देख, तू चंगा हो गया है; फिर से पाप मत करना, ऐसा न हो कि इससे कोई भारी विपत्ति तुझ पर आ पड़े'' (5:14)। इस कहानी में हमें यह नहीं बताया गया कि वह स्त्री यीशु द्वारा उसके लिए किए गए कार्य से कैसे प्रभावित हुई। क्या उसने विश्वास

कर लिया था? क्या उसने अपने पाप से मन फिराने का मन बना लिया था? हम इन प्रश्नों का बिल्कुल सही उत्तर नहीं दे सकते।

परन्तु हम इतना दावे के साथ कह सकते हैं कि यीशु ने उसे भविष्य के लिए आशा दे दी। ''फिर'' (मूलत: ''अब से'') आगे की ओर देखना है। अपने किसी परिचित को किसी पाप में पकड़े जाने पर (क्या हम दो हज़ार वर्षों बाद उसके बारे में ''व्यभिचारिन स्त्री'' के रूप में बात नहीं कर रहे?), हम आगे देखने के बजाय पीछे अर्थात उसके पिछले जीवन की ओर देखते हैं। पाप बड़ी आसानी से उसकी पहचान बन जाता है। उस स्त्री को कहे यीशु के शब्द चिल्ला चिल्लाकर यह संदेश देते हैं ''आपके पाप से बढ़कर आपके जीवन के लिए बहुत कुछ है। आप अपने पाप से मुड़ सकते हैं!'' यह वह संदेश था जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता उस व्यभिचारिन स्त्री और उसके साथी सभी मानवीय जीवों को है। यीशु जो ''अनुग्रह और सच्चाई से परिपूर्ण'' है, हम में से हर एक के लिए एक नई शुरुआत करने के अवसर की पेशकश करता है!

सारांश

8:1-11 की कहानी हमें इस आश्चर्य में डाल देती है कि उस स्त्री का क्या हुआ। क्या वह यीशु के पीछे चल पड़ी या इसके बाद भी व्यभिचार करती रही? हमें यह कल्पना करना अच्छा लगेगा कि उसने यीशु द्वारा दिए गए अद्‌भुत उपहार के महत्व को समझा, परन्तु बाइबल हमें इस बारे में नहीं बताती। शायद यही सबसे अच्छा ढंग है क्योंकि यह कहानी मुख्य रूप से हम में से हर एक की है। जब हम यीशु का संदेश सुनते हैं, तो हम भी, अपने पाप में ''पकड़े'' जाते हैं। हमें अहसास होता है कि हमें ढूंढ़ लिया गया है, कि परमेश्वर हमारे पाप को जानता है, और यह कि हम दोषी हैं।

कई बार लोग इस बात का रोष करते हैं कि उस स्त्री को तो यीशु के पास लाया गया जबकि उसके साथ पाप करने वाले उसके साथी को नहीं। वास्तव में, वह स्त्री उस दिन धन्य हो गई थी। हो सकता है कि उसका साथी ग्रन्थियों और फरीसियों से बचकर भाग गया हो, परन्तु वह परमेश्वर से नहीं भाग पाया था। भागने में सफल होकर उसे लगा होगा कि वह बच गया, जबकि वास्तव में उसने अपने पाप से अपने आपको मूर्ख बनाया था। दूसरी ओर, वह स्त्री अपने पाप की वास्तविकता से भागी नहीं थी। इसके बाद जो कुछ भी हुआ, उससे उस आदमी को नहीं बल्कि उस स्त्री को आशीष मिली थी। जब तक हम अपने पापी होने की स्थिति का इन्कार करते हैं, तब तक हम परमेश्वर को अपने पाप क्षमा करने की इच्छा में विफल करते हैं।

उस स्त्री की तरह ही, आज भीड़ हम पर भी आरोप लगा रही है। यदि लोगों को पता चले कि हम क्या करते और विचार करते हैं, तो वे निश्चय ही हमें दण्ड देंगे। यीशु हमें हम से अधिक अच्छी तरह जानता है, फिर भी वह हमारे लिए वैसे ही खड़ा है (कई बार झुक जाता है) जैसे वह उस स्त्री के लिए खड़ा हुआ था। वह हमारे और हम पर आरोप लगाने वाली भीड़ के बीच, हमारे और दण्ड के बीच, हमारे और क्रूस के बीच आकर हमें बचा लेता है!

सम्भवत:, मन्दिर के कुछ लोग उस रात घर जाकर शिकायत करते होंगे कि यीशु ने जो कुछ किया वह सही नहीं था। कुछ ने तो अवश्य कहा होगा, ''पाप का दण्ड तो मिलना ही चाहिए।'' जो बात उन्होंने महसूस नहीं की वह यह थी कि पाप का दाम वास्तव में सुसमाचार के यूहन्ना द्वारा लिखित भाग में लिखी गई बाद की घटनाओं से चुका दिया गया था। ''मैं भी तुझ पर दण्ड की आज्ञा नहीं करता'' कहने वाला ''परमेश्वर का मेम्ना'' ही था, जो जगत का पाप उठा ले जाता है (1:29)। उसने क्रूस पर हमारे पापों का दाम चुका दिया है और अब वह हम सबसे जो दंडित पापी हैं, कहता है, ''मैं भी तुझ पर दण्ड की आज्ञा नहीं देता; जा और फिर पाप न करना।''

पाद टिप्पणियां

[1]बहुत से आधुनिक अनुवादों की तरह, यह कहते हुए कि यह वाक्य प्राय: पुराने हस्तलेखों में नहीं मिलता, हिन्दी के अनुवाद में यूहन्ना 7:53-8:11 को कोष्ठकों में रखा गया है। यह पैरा केवल बाद के कुछ यूनानी हस्तलेखों में, और वह भी अलग-अलग स्थानों अर्थात यूहन्ना 7:36; 7:44; 7:52; 21:25; और लूका 21:38 में मिलता है। परन्तु इससे यह संकेत *नहीं* मिलता कि यह लेख आत्मा की प्रेरणा रहित है और इसकी उपेक्षा कर दी जाए। मैज़्गर का मानना था कि ''इस वर्णन की ऐतिहासिक यथार्थता के सभी चिह्न हैं'' (ब्रूस मैज़्गर, *ए टैक्स्चुअल कमैन्ट्री ऑन द ग्रीक न्यू टैस्टामेन्ट* [स्टुटगर्ट, जर्मनी: यूनाइटेड बाइबल सोसायटीज़, 1975], 200). 7:53-8:11 तौभी शायद मूल रूप में सुसमाचार का यूहन्ना द्वारा लिखित भाग नहीं था, परन्तु सम्भवत: कहानी के रूप में सम्भाल कर रहा था जो पहली शताब्दी के ट्रेक्ट के एक रूप में बनने तक सुनाकर आगे बताया जाता था। इतना छोटा होने के कारण कि अकेले रहकर इसका महत्व नहीं हो सकता, लगता है कि इसे सुसमाचार के यूहन्ना द्वारा लिखित भाग के आठवें अध्याय में उचित स्थान मिला है। [2]लूका 21:37 संकेत देता है कि यीशु दिन के समय यरूशलेम में उपदेश देता था और रात को जैतून के पहाड़ पर आराम करता था। यह स्थान सम्भवत: बैतनिय्याह में मरियम और मरथा के घर में था जो जैतून के पहाड़ की पूर्वी ढलानों पर था। [3]''ग्रन्थियों और फरीसियों'' एक वाक्यांश है जो समानांतर सुसमाचारों में बार-बार मिलता है, यूहन्ना रचित सुसमाचार में केवल यहीं है। [4]देखिए लैव्यव्यवस्था 20:10; व्यवस्थाविवरण 22:21-24. [5]देखिए यूहन्ना 18:31. प्रेरितों 7 में स्तिफनुस पर पथराव, जो इसका एक अपवाद लगता है, वास्तव में एक कानूनी दण्ड के बजाय बलवई भीड़ का एक आवेशपूर्ण काम था।